शिक्षा संवाद
2020, 7(1-2): 29-36
ISSN: 2348-5558
©2020, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

कहानी

बाँका ज़मीनदार

प्रेमचंद

एक क़त्ल का मुक़दमा जीतने के बदले वकील ठाकुर प्रद्युन सिंह उस मौज़े को बतौर नज़राने के पा जाते हैं जिसे वह बहुत अर्से से पसंद करते आ रहे थे। मौज़ा मिलने पर वह रिआया के साथ इतनी सख़्ती करते हैं कि गाँव कई बार उजड़ता है और बसता है। फिर एक ऐसी क़ौम उस गाँव में आ कर बसती है जो ठाकुर साहब को लोहे के चने चबवा देती है।

ठाकुर प्रदुम्न सिंह एक मुमताज़ वकील थे और अपने हौसले हिम्मत के लिए सारे शहर में मशहूर, उनके अक्सर अहबाब कहा करते कि इजलास अदालत में उनके ये मर्दाना कमालात ज़्यादा नुमायां तौर पर ज़ाहिर हुआ करते हैं। इसी की बरकत थी कि बावजूद इसके कि उन्हें शाज़ ही किसी मुआमले में सुर्ख़रूई हासिल होती थी। उनके मुवक्किलों के हुस्न-ए-अक़ीदत में ज़र्रा भर भी फ़र्क़ नहीं आता था। सदर इंसाफ़ पर जलवा फ़रमा होने वाले बुज़ुर्गों की बेख़ौफ़ आज़ादी पर किसी क़िस्म का शुब्हा करना कुफ़्र ही क्यों न हो मगर शहर के वाक़िफ़कार लोग ऐलानिया कहते थे कि ठाकुर साहब जब किसी मुआमले में ज़िद पकड़ लेते तो उनका बदला हुआ तेवर और तमतमाया हुआ चेहरा इंसाफ़ को भी अपना ताबे-ए-फ़रमान बना लेते थे। एक से ज़्यादा मौक़ों पर उनके जीवट और जिगर वो मोजज़े कर दिखाते थे जहाँ इंसाफ़ और क़ानून ने जवाब दे दिया था। इसके साथ ही ठाकुर साहब मर्दाना औसाफ़ के सच्चे जौहर शनास थे। अगर मुवक्किल को फ़न-ए-ज़ोर-आज़माई में कुछ दस्तरस हो तो ये ज़रूरी नहीं था कि वो उनकी ख़िदमत हासिल करने के लिए माल-ओ-ज़र का मिन्नतकश बने। इसी लिए उनके यहाँ शहर के पहलवानों और फ़िक़ैतों का हमेशा जमघट रहता था और यही वो ज़बरदस्त पुरतासीर और अमली नुक्ता क़ानून था जिसकी तरदीद करने में इंसाफ़ को भी ताम्मुल होता था। वो ग़रूर और सच्चे ग़रूर की दिल से क़दर करते थे। उनके ख़ाना में तकल्लुफ़ के आस्ताने बहुत ऊंचे थे वहाँ झुकने की ज़रूरत न थी। इंसान ख़ूब सर उठाकर जा सकता था। ये मोतबर रिवायत है कि एक बार उन्होंने कभी मुक़द्दमे को बावजूद बहुत मिन्नत व इसरार के हाथ में लेने से इनकार किया। मुवक्किल कोई अक्खड़ दहक़ानी था। उसने जब मिन्नत से काम निकलते न देखा तो हिम्मत से काम लिया। वकील साहब कुर्सी से नीचे गिर पड़े और बिफरे हुए दहक़ान को साइन से लगा लिया।

दौलत को ज़मीन से अज़ली मुनासिब है। ज़मीन में आम कशिश के सिवा एक ख़ास ताक़त होती है जो हमेशा दौलत को अपनी तरफ़ खींचती है। सूद और तमस्सुक और तिजारत ये दौलत की दरमियानी मंज़िलें हैं। ज़मीन उसकी मंज़िल-ए-मक़्सूद है। ठाकुर प्रदुमन सिंह की निगाहें बहुत अरसे से एक बहुत ज़रख़ेज़ मौज़ा पर लगी हुई थीं। लेकिन बैंक का अकाउंट कभी हौसले को क़दम नहीं बढ़ाने देता था। यहाँ तक कि एक दफ़ा उसी मौज़ा का ज़मींदार एक क़त्ल के मुआमले में माख़ूज़ हुआ। उसने तो सिर्फ़ रस्मो रिवाज के मुवाफ़िक़ एक असामी को दिन भर धूप और जेठ की जलती हुई धूप में खड़ा रखा था, लेकिन अगर आफ़ताब की तमाज़त या जिस्मानी कमज़ोरी या प्यास की शिद्दत उसकी जान लेवा बन जाये तो इसमें ज़मींदार की क्या ख़ता थी। ये वुकला-ए-शहर की ज़्यादती थी कि कोई उसकी हिमायत पर आमादा न हुआ या मुम्किन है ज़मींदार की तह दस्ती को भी इसमें कुछ दख़ल हो। बहरहाल उसने चारों तरफ़ से ठोकरें खाकर ठाकुर साहब की पनाह ली। मुक़द्दमा निहायत कमज़ोर था। पुलिस ने अपनी पूरी ताक़त से धावा किया था और उसकी कुमुक के लिए हुकूमत और इख्तियार के ताज़ा दम रिसाले तैयार थे।

ठाकुर साहब आज़मूदाकार सपेरों की तरह साँप के मांद में हाथ नहीं डालते थे लेकिन इस मौक़े पर उन्हें ख़ुश्क मस्लिहत के मुक़ाबले में अपनी मुद्दाओं का पल्ला झुकता हुआ नज़र आया। ज़मींदार की तशफ़्फ़ी की और वकालत नामा दाख़िल कर दिया और फिर ऐसी जाँफ़िशानी से मुक़द्दमे की पैरवी की। कुछ इस तरह जान लड़ाई कि मैदान से फ़तह व नुसरत के शादियाने बजाते हुए निकले। ज़बान-ए-ख़ल्क़ इस फ़तह का सेहरा उनकी क़ानूनी दस्तरस के सर नहीं, उनके मर्दाना औसाफ़ के सर रखती है। क्योंकि उन दिनों वकील साहब नज़ाइर व दफ़आत की हिम्मत शिकन पेचीदगियों में उलझने के बजाय दंगल के हौसला बख्श दिलचस्पियों में ज़्यादा मुनहमिक रहते थे लेकिन ये मुतलक़ क़रीं क़ियास नहीं मालूम होता। ज़्यादा वाक़िफ़कार लोग कहते हैं कि अनार के बम गोलों और सेब व अंगूर की गोलीयों ने पुलिस के इस हमला पुरशोर को मुंतशिर कर दिया। अल-ग़रज़ मैदान हमारे ठाकुर साहब के हाथ रहा। ज़मींदार की जान बची। वो मौत के मुँह से बाहर निकल आया। उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला, "ठाकुर साहब! मैं इस क़ाबिल तो नहीं कि आपकी कुछ ख़िदमत कर सकूँ, ईश्वर ने आपको बहुत कुछ दिया है लेकिन कृष्ण भगवान ने ग़रीब सुदामा के सूखे चावल ख़ुशी से क़बूल किए थे। मेरे पास बुज़ुर्गों की यादगार एक छोटा सा वीरान मौज़ा है, उसे आपकी नज़र करता हूँ। आपके लायक़ तो नहीं, लेकिन मेरी ख़ातिर से उसे क़बूल कीजिए। मैं आपका जस कभी नहीं भूलूँगा।"

वकील साहब फड़क उठे। दो-चार बार आरिफ़ाना इनकार के बाद इस नज़र को क़बूल कर लिया। मुँह माँगी मुराद बर आई।

इस मौज़े के लोग निहायत सरकश और फ़ित्ना पर्दाज़ थे जिन्हें इस बात का फ़ख्र था कि कभी कोई ज़मींदार उन्हें पाबंद-ए-अनान नहीं कर सका लेकिन जब उन्होंने अपनी बागडोर प्रदुम्न सिंह के हाथों में जाते देखी तो चौकड़ियाँ भूल गए। एक बदलगाम घोड़े की तरह सवार को कनखियों से देखा, कनौतियां खड़ी कीं, कुछ हिनहिनाये और तब गर्दनें झुका दें। समझ गए कि ये जिगर का मज़बूत और आसन का पक्का शहसवार है।

असाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच बेच कर बैलून की तलाश में दरबदर फिरते थे। गाँव की बूढ़ी बनियाइन नवेली दुल्हन बनी हुई थी और फ़ाक़ा कश कुम्हार बारात का दूल्हा था। मज़दूर मौक़े के बादशाह बने हुए थे। टपकी हुई छतें उनके निगाह-ए-करम की मुंतज़िर, घास से ढके हुए खेत उनके दस्त-ए-शफ़क़त के मुहताज। जिसे चाहते थे बसाते थे, जिसे चाहते थे उजाड़ते थे। आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज़, मनचले लड़कों का मुहासिरा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियाँ लटकाए पहर रात से टपके की खोज में घूमते नज़र आते थे। जो बावजूद पीराना साली के भजन और जाप से ज़्यादा दिलचस्प और पुर मज़ा शुग़ल था। नाले पुरशोर, नदियाँ अथाह, चारों तरफ़ हरियाली और सब्ज़ा और नुज़हत का हुस्न-ए-बसीत।

उन्हें दिनों ठाकुर साहब मर्ग-ए-बेहंगाम की तरह गाँव में आए। एक सजी हुई बारात थी। हाथी और घोड़े और साज़-ओ-सामान, लठैतों का एक रिसाला साथ गाँव के लोगों ने ये तुमतराक़ और कर्र-ओ-फ़र्र देखा तो रहे सहे होश अड़गए। घोड़े खेतों में ऐंडने लगे और गुंडे गलियों में। शाम के वक़्त ठाकुर साहब ने अपने असामियों को बुलाया और तब बआवाज़-ए-बुलंद बोले, "मैंने सुना है कि तुम लोग बड़े सरकश हो और मेरी सरकशी का हाल तुमको मालूम ही है। अब ईंट और पत्थर का सामना है। बोलो क्या मंज़ूर है!"

एक बूढ़े किसान ने बेद-ए-लर्ज़ां की तरह काँपते हुए जवाब दिया, "सरकार आप हमारे राजा हैं हम आपसे ऐंठ कर कहाँ जाएंगे।"

ठाकुर साहब तेवर बदल कर बोले, "तुम लोग सब के सब कल सुबह तक तीन साल का पेशगी लगान दाख़िल करदो और ख़ूब ध्यान देकर सन लो मैं हुक्म को दोहराना नहीं जानता, वरना मैं गाँव में हल चलवा दूंगा और घरों को खेत बनादूंगा। सारे गाँव में कुहराम मच गया तीन साल का पेशगी लगान और इतनी जल्द फ़राहम होना ग़ैर-मुमकिन था। रात इसी हैसबैस में कटी। अभी तक मिन्नत व समाजत के बरक़ी तासीर की उम्मीद बाक़ी थी। सुबह बहुत इंतज़ार के बाद आई तो क़ियामत बन कर आई। एक तरफ़ तो जब्र-ओ-तशद्दुद और ज़ुल्म-ओ-तहक्कुम के हंगामे गर्म थे। दूसरी तरफ़ दीदा-ए-गिर्यां और आह-ए-सर्द और नाला-ए-बेदाद के। ग़रीब किसान अपने अपने बुक़चे लादे बेकसाना अंदाज़

से ताकते, आँखों में इल्तिजा, बीवी-बच्चों को साथ लिये रोते बिलकते किसी नामालूम दयार-ए-ग़ुर्बत को चले जाते थे। शाम हुई तो गाँव शहर-ए-ख़मोशां बना हुआ था।

ये ख़बर बहुत जल्द चारों तरफ़ फैल गई। लोगों को ठाकुर साहब के इंसान होने पर शकूक होने लगे। गाँव वीरान पड़ा था। कौन उसे आबाद करे! किस के बच्चे उसकी गलियों में खेलें। किसकी ख़वातीन कूँओं पर पानी भरें। राह चलते मुसाफ़िर तबाही का ये नज़ारा आँखों से देखते और अफ़सोस करते, नहीं मालूम बेचारे ग़ुर्बत ज़दों पर किया गुज़री। आह! जो मेहनत की कमाई खाते थे और सर उठाकर चलते थे अब दूसरों की गुलामी कर रहे हैं।

इस तरह एक पूरा साल गुज़र गया। तब गाँव के नसीब जागे। ज़मीन ज़रख़ेज़ थी, मकानात मौजूद। रफ़्ता-रफ़्ता ज़ुल्म की ये दास्ताँ फीकी पड़ गई। मनचले किसानों की हवसनाक निगाहें उसपर पड़ने लगीं। बला से ज़मींदार ज़ालिम है, जाबिर है, बेरहम है, हम उसे मनालेंगे, तीन साल की पेशगी लगान का क्या ज़िक्र, वो जैसे ख़ुश होगा उसे ख़ुश करेंगे! उसकी गालियों को दुआ समझेंगे, उसके जूते अपने सर और आँखों पर रखेंगे, वो राजा हैं, हम उनके चाकर हैं। ज़िंदगी की कश्मकश और जंग में ख़ुद्दारी और ग़ुर्बत को निबाहना कैसा मुश्किल काम है। दूसरा असाढ़ आया तो वो गाँव फिर रश्क-ए-गुलज़ार बना हुआ था। बच्चे फिर अपने दरवाज़ों पर घरौंदे बनाने लगे। मर्दों के बुलंद नग़मे खेतों में सुनाई देने लगे और औरतों की सुहानी गीतें चक्कीयों पर ज़िंदगी की दिलफ़रेब जल्वे नज़र आने लगे।

साल भर और गुज़रा जब रबी की दूसरी फ़सल आई तो सुनहरी यादव को खेतों में लहराते देखकर किसानों के दिल लहराने लगते थे। साल भर की उफ़्तादा ज़मीन ने सोना उगल दिया था। औरतें ख़ुश थीं कि अब की नए नए गहने बनवाएंगे। मर्द ख़ुश थे कि अच्छे अच्छे बैल मोल लेंगे। और दारोगा जी के मसर्रत की तो कोई इंतिहा न थी।

ठाकुर साहब ने ये ख़ुश आइंद ख़बरें सुनीं और देहात की सैर को चले। वही तुज़्क-ओ-एहतिशाम, वही लठैतों का रिसाला, वही गुंडों की फ़ौज! गाँव वालों ने उनके ख़ातिर-ओ-ताज़ीम की तैयारीयां करनी शुरू कीं। मोटे ताज़े बकरों का एक पूरा गल्ला चौपाल के दरवाज़ा पर बाँधा। लकड़ी के अंबार लगा दिए। दूध के हौज़ भर दिए। ठाकुर साहब गाँव के मेंडे पर पहुंचे तो पूरे एक सौ आदमी उनकी पेशवाई के लिए दस्त-बस्ता खड़े थे। लेकिन पहली चीज़ जिसकी फ़रमाइश हुई वो लेमोनेड और बर्फ़ था। असामियों के हाथों के तोते उड़गए। ये पानी का बोतल उस वक़्त वहाँ आब-ए-हयात के दामों बिक सकता था मगर बे चारे दहक़ान! अमीरों के चोंचले क्या जानें। मुजरिमों की तरह सर झुकाए दम-बख़ुद खड़े थे। चेहरे पर ख़िफ़्फ़त और नदामत थी। दिलों में धड़कन और ख़ौफ़, ईश्वर! बात बिगड़ गई है। अब तुम्हें संभालो। बर्फ़ की ठंडक न मिली तो ठाकुर साहब के प्यास की आग और भी तेज़ हुई। ग़ुस्सा भड़क

उठा। कड़क कर बोले, "मैं शैतान नहीं हूँ कि बकरों के ख़ून से प्यास बुझाऊं। मुझे ठंडा बर्फ़ चाहिए। और यह प्यास तुम्हारे और तुम्हारे औरतों के आँसूओं से ही बुझेगी। एहसान फ़रामोश कमज़र्फ़, मैंने तुम्हें ज़मीन दी, मकान दिए और हैसियत दी और इसका सिला ये है कि मैं खड़ा पानी को तरसता हूँ। तुम इस क़ाबिल नहीं हो कि तुम्हारे साथ कोई रिआयत की जाये। कल शाम तक मैं तुममें से किसी आदमी की सूरत इस गाँव में न देखूं। वरना क़हर हो जाएगा। तुम जानते हो कि मुझे अपना हुक्म दोहराने की आदत नहीं है। रात तुम्हारी है जो कुछ ले जा सको ले जाओ, लेकिन शाम को मैं किसी की मन्हूस सूरत न देखूं। ये रोना और चीख़ना फ़ुज़ूल है। मेरा दिल पत्थर का है और कलेजा लोहे का। आँसूओं से नहीं पसीजता।"

और ऐसा ही हुआ। दूसरी रात को सारे गाँव में कोई दीया जलाने वाला तक न रहा। फूलता फलता हुआ गाँव भूत का डेरा बन गया।

अरसा-ए-दराज़ तक ये वाक़िआ क़ुर्रब-ओ-जवार के मनचले क़िस्सा गोयों के लिए दिलचस्पियों का माख़ज़ बना रहा। एक साहब ने उस पर अपनी तब्अ-ए-मौज़ूँ की जौलानियाँ भी दिखाईं। बेचारे ठाकुर साहब ऐसे बदनाम हुए कि घर से निकलना मुश्किल हो गया। बहुत कोशिश की कि गाँव आबाद हो जाए लेकिन किस की जान भारी थी कि इस अंधेर नगरी में क़दम रखता जहाँ फ़र्बही की सज़ा फांसी थी। कुछ मज़दूर पेशा लोग क़िस्मत का जुआ खेलने लगे मगर चंद महीनों से ज़्यादा न जम सके। उजड़ा हुआ गाँव खोया हुआ एतबार है जो बहुत मुश्किल से जमता है। आख़िर जब कोई बस न चला तो ठाकुर साहब ने मजबूर हो कर अराज़ी माफ़ का आम ऐलान कर दिया लेकिन इस रिआयत ने रही सही साख भी खो दी।

इस तरह तीन साल गुज़र जाने के बाद एक रोज़ वहाँ बंजारों का क़ाफ़िला आया। शाम हो गई थी और पूरब तरफ़ से तारीकी की लहर बढ़ती चली आती थी। बंजारों ने देखा तो सारा गाँव वीरान पड़ा हुआ है जहाँ आदमीयों के घरों में गिद्ध और गीदड़ रहते थे। इस तिलिस्म का राज़ समझ में न आया। मकानात मौजूद, ज़मीन ज़रख़ेज़, सब्ज़ा से लहराए हुए खेत और इंसान का नाम नहीं। कोई और गाँव क़रीब न था। वहीं फ़िरोकश हो गए। जब सुबह हुई, बैलों के गलों की घंटियों ने फिर अपना नग़मा अलापना शुरू किया और क़ाफ़िला गाँव से कुछ दूर निकल गया तो एक चरवाहे ने जोर-ओ-जब्र की ये दास्तान-ए-तवील उन्हें सुनाई। सैरो सियाहत ने उन्हें मुश्किलात का आदी बना दिया था। आपस में कुछ मश्वरा किया और फ़ैसला हो गया। ठाकुर साहब के दर-ए-दौलत पर जा पहुंचे और नज़राने दाख़िल करदिए। गाँव फिर आबाद हुआ।

ये बंजारे बला के जफ़ाकश, आहनी हिम्मत और इरादे के लोग थे। जिनके आते ही गाँव में लक्ष्मी का राज हो गया। फिर घरों में से धूँएं के बादल उठे। कोलुव्हाड़ों ने फिर दुखानी चादरें ज़ेब-ए-तन

कीं कि तुलसी के चबूतरे पर फिर चराग़ जले, रात को रंगीन तबा नौजवान की अलापें सुनाई देने लगीं। सब्ज़ा ज़ारों में फिर मवेशियों के गल्ले दिखाई दिए और किसी दरख़्त के नीचे बैठे चरवाहे की बाँसुरी की मद्धम और रसीली सदा दर्द और असर में डूबी हुई, इस क़ुदरती मंज़र में जादू की कशिश पैदा करने लगी।

भादों का महीना था। कपास के फूलों की सुर्ख़ व सफ़ेद मलाहत, तिल की ऊदी बहार और सुन की शोख़ ज़र्दी खेतों में अपने बूक़लमूं हुस्न के जल्वे दिखाती थी। किसानों के मंढियों और छप्परों पर भी गुल-ओ-समर की रंग आमेज़ियां नज़र आती थीं। उस पर पानी की हल्की हल्की फुवारें हुस्न-ए-क़ुदरत के लिए मश्शाता का काम दे रही थीं। जिस तरह आरिफ़ों के दिल नूर-ए-हक़ीक़त से लबरेज़ होते हैं उसी तरह सागर और तालाब शफ़्फ़ाफ़ पानी से लबरेज़ थे। शायद राजा इंद्र कैलाश की तरावत बेज़ बुलंदीयों से उतर कर अब मैदानों में आने वाले थे, इसी लिए सेरचश्म क़ुदरत ने हुस्न और बरकत और उम्मीद के तोशे ख़ाने खोल दिए थे। वकील साहब को भी तमन्नाए सैर ने गुदगुदाया। हस्ब-ए-मामूल अपने रईसाना कर्र-ओ-फ़र के साथ गाँव में आ पहुंचे। देखा तो क़नाअत और फ़राग़त की बरकतें चारों तरफ़ नमुदार थीं।

गाँव वालों ने उनकी तशरीफ़ आवरी की ख़बर सुनी। सलाम को हाज़िर हुए। वकील साहब ने उन्हें अच्छे अच्छे कपड़े पहने, ख़ुद्दारी के साथ क़दम उठाते हुए देखा। उनसे बहुत ख़ंदापेशानी से मिले। फ़सल की कैफ़ियत पूछी। बूढ़े हरदास ने एक ऐसे लहजे में जिससे कामिल ज़िम्मेदारी और इमामत की शान टपकती थी जवाब दिया, "हुज़ूर के क़दमों की बरकत से सब चैन है। किसी तरह की तकलीफ़ नहीं। आपकी दी हुई नेअमत खाते हैं और आपका जस गाते हैं। हमारे राजा और सरकार जो कुछ हैं आप हैं और आपके लिए जान तक हाज़िर है।"

ठाकुर साहब ने तेवर बदल कर कहा, "मैं अपनी ख़ुशामद सुनने का आदी नहीं हूँ।" बूढ़े हरदास की पेशानी पर बल पड़े, ग़रूर को चोट लगी। बोला, "मुझे भी ख़ुशामद करने की आदत नहीं है।"

ठाकुर साहब ने ऐंठ कर जवाब दिया, "तुम्हें रईसों से बात करने की तमीज़ नहीं। ताक़त की तरह तुम्हारी अक़्ल भी बुढ़ापे के नज़र हो गई।"

हरदास ने अपने साथियों की तरफ़ देखा। ग़ुस्से की हरारत से सबकी आँखें फैली और इस्तिक़लाल की सर्दी से माथे सिकुड़े हुए थे। बोला, "हम आपकी रईयत हैं, लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे अपने ज़मींदार को अपना सर दे दें। आबरू नहीं दे सकते।"

हरदास के कई मनचले साथियों ने बुलंद आवाज़ में ताईद की, "आबरू जान के पीछे है।" ठाकुर साहब के ग़ुस्से की आग भड़क उठी और चेहरा सुर्ख़ हो गया। ज़ोर से बोले, "तुम लोग ज़बान

सँभाल कर बातें करो, वरना जिस तरह गले में झोलियाँ लटकाए आए थे उसी तरह निकाल दिए जाओगे। मैं प्रदुम्न सिंह हूँ जिसने तुम जैसे कितने ही हैकड़ों को इसी जगह पैरों से कुचल डाला है।" ये कह कर उन्होंने अपने रिसाले के सरदार अर्जुन सिंह को बुलाकर कहा, "ठाकुर अब इन च्यूँटीयों के पर निकल आए हैं। कल शाम तक इन हशरात से मेरा गाँव पाक व साफ़ हो जाए।"

हरदास खड़ा हो गया। ग़ुस्सा अब चिंगारी बन कर आँखों से निकल रहा था। बोला, "हमने इस गाँव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक जिएंगे इसी गाँव में रहेंगे। यहीं पैदा होंगे और यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ों की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अख्खड़ गंवार हैं। नाहक़ ग़रीबों की जान के पीछे न पड़िए। ख़ून ख़राबा हो जाएगा। लेकिन आप को यही मंज़ूर है तो हमारी तरफ़ से भी आपके सिपाहियों को चुनौती है। जब चाहें दिल के अरमान निकाल लें।"

इतना कह कर उसने ठाकुर साहब को सलाम किया और चल दिया। उसके साथी भी अंदाज़-ए-पुरग़ुरूर के साथ अकड़ते हुए चले। अर्जुन सिंह ने उनके तेवर देखे। समझ गया कि ये लोहे के चने हैं। लेकिन शोहदों का सरग़ना था। कुछ अपने नाम की लाज थी।

दूसरे दिन शाम के वक़्त जब रात और दिन में मुड़भेड़ हो रही थी इन दोनों जमातों का सामना हुआ। फिर वो धौल धप्पा हुआ कि ज़मीन थर्रा गई। ज़बानों ने मुँह के अंदर वो मार्के दिखाए कि आफ़ताब मारे ख़ौफ़ के पच्छिम में जा छुपा। लाठियों ने सर उठाया लेकिन क़ब्ल इसके कि वो डाक्टर साहब की दुआ और शुक्रिया की मुस्तहिक़ हों अर्जुन सिंह ने दानिशमंदी से काम लिया। ताहम उनके चंद आदमीयों के लिए गुड़ और हल्दी पीसने के सामान हो चुके थे।

वकील साहब ने अपनी फ़ौज की ये हालत-ए-ज़ार देखी। किसी के कपड़े फटे हुए किसी के जिस्म पर गर्द जमी हुई, कोई हाँपते काँपते बेदम, ख़ून बहुत कम नज़र आया। क्योंकि ये एक बेश बहा जिन्स है और उसे डंडों की ज़द से बचा लिया गया था। तो उन्होंने अर्जुन सिंह की पीठ ठोंकी और उनकी शुजाअत व जाँबाज़ी की ख़ूब दाद दी। रात को उनके सामने लड्डू और इमरतियों की ऐसी बारिश हुई कि ये सब गर्द-ओ-ग़ुबार धुल गया।

सुबह को इस रिसाला ने ठंडे ठंडे घर की राह ली और क़सम खा गए कि अब भूल कर भी इस गाँव का रुख न करेंगे। तब ठाकुर साहब ने गाँव के आदमीयों को चौपाल में तलब किया। उनके इशारे की देर थी। सब लोग इकट्ठे हुए। इख्तियार और हुकूमत अगर मसनद-ए-ग़रूर से इतराए तो दुश्मनों को भी दोस्त बना सकती है।

जब सब आदमी आगए तो ठाकुर साहब एक एक करके उनसे बग़लगीर हुए और कहा, "मैं ईश्वर का बहुत मशकूर हूँ कि मुझे इस गाँव के लिए जिन आदमीयों की तलाश थी वो लोग मिल गए।

आपको मालूम है कि ये गाँव कई बार उजड़ा और कई बार बसा। इसका सबब यही था कि वो लोग मेरे मेयार पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था। लेकिन मेरी दिली ख़्वाहिश ये थी कि इस गाँव में वो लोग आबाद हों जो ज़ुल्म-ओ-सितम का मर्दों की तरह सामना करें जो अपने हुक़ूक़ और रिआयतों की मर्दों की तरह हिफ़ाज़त करें। जो हुकूमत के ग़ुलाम न हों, जो रोब और इख्तियार की निगाह तेज़ देखकर बच्चों की तरह ख़ौफ़ से सहम न जाएं। मुझे इत्मीनान है कि बहुत नुक़्सान और नदामत और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएं पूरी हो गई हैं। मुझे इत्मीनान है कि आप नामुवाफ़िक़ हवाओं और मुतलातुम मौजों का कामयाबी से मुक़ाबला करेंगे। मैं आज इस गाँव से दस्तबरदार होता हूँ। आज से ये आपकी मिल्कियत है। आप ही उसके ज़मींदार और मुख़्तार हैं। ईश्वर से मेरी यही दुआ है कि आप फूलें फलें और सरसब्ज़ हों।"

इन अलफ़ाज़ ने दिलों पर तस्ख़ीर का काम किया। लोग आक़ा परस्ती के जोश से मस्त हो हो कर ठाकुर साहब के पैरों से लिपट गए और कहने लगे, "हम आपके क़दमों से जीते-जी जुदा न होंगे। आपका सा मुरब्बी और क़द्रदाँ और रिआया परवर बुज़ुर्ग हम कहाँ पाएंगे।"

जाँबाज़ाना अक़ीदत और हमदर्दी, वफ़ादारी और एहसान का एक बड़ा दर्दनाक और मुअस्सर नज़ारा आँखों के सामने पेश हो गया। लेकिन ठाकुर साहब अपने फ़ैयाज़ाना इरादे पर साबित क़दम रहे और गो पचास साल से ज़्यादा गुज़र गए हैं लेकिन उन्हीं बंजारों के विरसा अभी तक मौज़ा साहब गंज के मुआफ़ीदार हैं। औरतें अभी तक ठाकुर प्रदुम्न सिंह की पूजा और मिन्नतें करती हैं। और गो अब इस मौज़े के कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलंदीयों पर पहुँच गए हैं लेकिन बूढ़े और अख्खड़ हरीदास के नाम पर अब भी फ़ख्र करते हैं और भादों सुदी एकादशी के दिन अब भी उस मुबारक फ़तह की यादगार में जश्न मनाए जाते हैं।

****